नवग्रह

विश्वकवि रवीन्द्र
की १२५वीं जयन्ती
के अवसर पर
प्रकाशित

नवाग्रह
सम्पादक
डॉ० कृष्णविहारी मिश्र
आवरण
मदन सूदन

प्रकाशक
स्वर समवेत
६, तनसुक लेन
कलकत्ता-७००००७

मूल्य
बीस रुपये

मुद्रक : भागचन्द सुराना
सुराना प्रिन्टिग वर्क्स
२०५, रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

NAVAGRAHA
Declaration of a new movement by nine eminent Hindi Writers
Edited by Dr. Krishna Bihari Mishra.

अभीप्सा

आधुनिकता और प्रगतिशीलता की जिन्हें सही जानकारी है, वे परम्परा की महत्ता से भी परिचित हैं और अपने समय को अपेक्षित गति देने के लिए अपनी विरासत से संवेदना और विवेक के स्तर पर जुड़ना जरूरी मानते हैं। मगर जिन्होंने आधुनिकता को आभूषण के रूप में ग्रहण किया है और प्रगतिशीलता से सिर्फ नारे तक जिनका सरोकार है, वे आँख मूँद करके अपनी पुरा-सम्पदा को आग लगा कर जहाँ-तहाँ का क्षार बटोरने में लगे हैं। अब घूरे पर भी गाछ उग आए और हरीतिमा की वंश-परम्परा का प्रवाह कायम रह सके, यह सौभाग्य प्रकृति की सहज लीला का परिणाम है; मगर हमारे वारिस हमें माफ़ नहीं कर सकते, जिन्हें हम समृद्ध आग की जगह राख का ढेर सौंप रहे हैं, उन्हें दिशाहारा बनाने वाली अशुभ शक्तियों को अपने तटस्थ्य और निष्क्रियता द्वारा सहयोग दे रहे हैं। इससे दयनीय दशा और क्या हो सकती है कि मूल्यों के जागरूक पहरुए मूल्यों की भयंकर दाही को चुपचाप देखते रहें।

नाना प्रलोभनों और चुनौतियों से घिरा हमारा समय लगभग उसी आबोहवा में साँस ले रहा है जिसने सोलहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के संतों, फ़कीरों, मनीषियों और कवियों-चिन्तकों को जन्म दिया था—जो प्रातिभ जागरण की गन्ध से आपूरित होती है। यह सच है कि राजनीतिक सनक, वैज्ञानिक शक्तियों का औद्धत्य और साम्प्रदायिक मूढ़ता से जन्मे प्रदूषण के सामने आज का आदमी अपने को अरक्षित और बेसहारा महसूस कर रहा है। दिशाहारा दशा और पाखंडवाद की अकुंठ लीला का मुकाबला अपनी प्रातिभ शक्ति और चारित्रिक ऊष्मा से अपने अपने समय में कबीर, तुलसी और परमहंस रामकृष्ण देव ने किया था और गण देवता को सही दिशा की इंगिति दी थी।

स्वामी विवेकानन्द ने राजनीति की छलना-मुद्रा को ठीक से समझा था और मनुष्य के उद्धार के लिए उसकी अपर्याप्त और भौतिक समृद्धि के चाकचिक्य की व्यर्थता की दृढ़तापूर्वक घोषणा करते मानवीय मूल्यों को कमज़ोर बनाने वाली सारी शक्तियों के प्रतिरोध में आवाज़ उठाई थी।

और विडम्बना यह कि साम्राज्यशाही के चँगुल से मुक्त होते ही भारत के विद्यावृतियों को प्रयोजन विशेष से बाहरी और भीतरी राजनीति विश्व बन्धुत्व का पाठ पढ़ाने लगी।

साहित्य, संस्कृति के क्षेत्र में विजातीय शक्तियों का हस्तक्षेप एक अंश तक सफल हुआ। दुर्भाग्यवश प्रतिभा शिविर-विशेष के इशारे पर नाचने लगी या फिर आत्यन्तिक स्वातन्त्र्य महत्ता का इज़हार करते समष्टि-छंद से कट कर व्यक्ति गुहा का तिलस्म रचने लग गयी।

औद्धत्य की इस कठोर चुनौती का मुकाबला करने में शिविरबद्ध विचार और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की ऊँची आवाज टेरने वाली राह पूर्णतः अक्षम है। संवेदना-ऊष्मा से रिक्त आवाज़ मनुष्य के लिए कभी विधायक नहीं सिद्ध हुई, मनुष्य जाति का इतिहास इस तथ्य का प्रमाण है।

नवाग्रह की यात्रा के मूल में यही सांस्कृतिक चिन्ता रही है। इस चिन्ता से जुड़े देश में केवल नौ ही लोग नहीं है। हमारा विश्वास है कि संवेदना प्रतिम कृती लोगों की संख्या भारत और दुनिया में कम नहीं है। यह आश्वासन प्रीतिकर सम्भवना का सूचक है। नवाग्रह अपनी रचनात्मक भूमिका द्वारा उस संवेदना-पंथा को समृद्ध करना चाहता है जो धरती की वेदना से जुड़ी है। हमारा आग्रह जातीय अस्मिता के प्रति है ज़रूर, मगर हम इस विवेक के प्रति पूर्ण सचेत हैं और अपनी विद्या-परम्परा के उदार गवाक्षों से पूर्णतः परिचित कि भारतीय विद्या-यात्रा के आदि बिन्दु पर ही विश्व मानुष-चेतना की उदात्त श्रुति आलोकित हुई थी। कम से कम भारत को औदार्य और विश्व बन्धुत्व का पाठ पढ़ाना एक हास्यास्पद आचरण है। दुनिया के किसी हिस्से के अमानुष भाव की निर्लज्ज लीला से भारत का मानस उन्मथित होता रहा है; आसुरी सत्ता के विरुद्ध भारतीय मनीषा सदा मुखर हुई है। आज दुनिया के विभिन्न हिस्सों में मानवीय सम्भावना के संहार के जो आयोजन चल रहे हैं, वे संवेदना के पक्षधर के लिए एक असाधारण चुनौती है। इस चुनौती का मुक़ाबला अपनी क़लम की शक्ति से करने हम निकले हैं। अपनी इस यात्रा में दुनिया के तमाम समानधर्मा मूल्यों के जागरूक प्रहरी को अपना हमसफ़र बनाने की आकुल अभीप्सा हमारे मन में है।

कृष्ण बिहारी मिश्र

नवाग्रह

१. नवाग्रह किसी विचार-मंच, आन्दोलन अथवा वाद की रूढ़ परिभाषा एवं संवैधानिक आग्रह से मुक्त समानधर्मा रचनाकारों के सामूहिक प्रयास की एक रचनात्मक भूमिका है।

२. नवाग्रह मानव चेतना के प्रवक्ता के रूप में नव सभ्यता एवं नव संस्कृति के बदलते तेवरों की पड़ताल करते हुए चेतना एवं चिन्तन के नये आयामों को उजागर करने की एक समवेत-स्वतंत्र लेखन-प्रस्तुति है।

३. विघटन एवं विनाश की ओर उभरते विश्व-संकट की पृष्ठभूमि में घटनाओं की जटिलता एवं मानवीय सम्बन्धों की निरर्थकता के कारण चेतना की समग्र संरचना बिखर रही है। इसी ख़तरे से उबरने के लिए नवाग्रह वैचारिक लड़ाई को जारी रखने की बौद्धिक जागरूकता का प्रस्थान-बिन्दु है।

४. उदात्त राष्ट्रीय चेतना एवं नैतिक संस्कारों से जुड़े मूल्यों की बुनियाद खोखली होती जा रही है। ऐसी स्थिति में नवाग्रह मूल्यों की पुनर्रचना के सन्दर्भ में उनकी परख करते हुए वैचारिक स्तर पर बौद्धिक सक्रियता को तेज़ करने का एक साहित्यिक समादान एवं अभियान है।

५. नवाग्रह की मान्यता है कि ईमानदारी से शोषित पीड़ित मानवता के पक्ष में जिए गये वैयक्तिक मूल्यों की श्रेष्ठता, दृढ़ता एवं विश्वसनीयता ही सामाजिक एवं राजनीतिक सरोकार के तहत मूल्यों की सार्थकता का वास्तविक आधार है।

६. नवाग्रह भारतीय परम्परा, राष्ट्रीयता एवं संस्कृति को एक गतिशील विचार-प्रवाह के रूप में स्वीकार करते हुए सांस्कृतिक तथा सामाजिक स्तर पर उभरती चुनौतियों एवं नये परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में उनकी मूल्यगत जीवन्तता एवं पक्षधरता का समर्थन करता है।

७. किसी भी प्रकार की विकास विरोधी स्थितियाँ लाने के ग़लत कदम का विरोध करते हुए शोषण मुक्त समाज-स्थापना में सक्रिय संगठनों के रचनात्मक स्वर को बदलने की दिशा में नवाग्रह की वैचारिक लड़ाई जारी रहेगी।

८. नवाग्रह विभिन्न विचार धाराओं से जुड़े रचनाकारों की साहित्यिक उपलब्धियों का सम्मान करते हुए पूर्वाग्रह से मुक्त चिन्तन की दिशा में विचार गोष्ठियों, परिचर्चाओं के माध्यम से स्वस्थ सर्जनात्मक परिवेश रचने को वैचारिक प्रस्तुति है।

९. नवाग्रह देश की सांस्कृतिक एवं सामाजिक उन्नति के पक्ष में उन तमाम नए पुराने रचनाकारों की सक्रिय रचना यात्रा है जो मानव मूल्यों की पुनर्नवता की दिशा में निरन्तर रचना रत हैं।

संयुक्त वक्तव्य

आज हम अपनी लम्बी विकास-यात्रा और तलाश के साथ एक ऐसे मोड़ पर आ पहुँचे हैं, जहाँ दिशाहीनता के कई खतरे चेतना के ठहराव की सूचना

देते हुए प्रतीत होते हैं ; किन्तु हमारी जिजीविषा का स्वर एवं अन्तःप्रज्ञ चेतना के विकास एवं तलाश को नया अर्थ देने की ओर गतिशील है। ऐतिहासिक शास्त्रों की रोशनी में अनुभव की अटूट शृंखला एवं विचार-परम्परा की उपस्थिति में मानव-संस्कृति एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास का लक्ष्य अभी तक अधूरा जान पड़ता है। आधुनिक विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ पूंजीवादी एवं समाजवादी देशों के सैद्धान्तिक और राजनीतिक संघर्षों के कारण वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में दरारें पड़ गई हैं। सम्प्रति हमारे तमाम आदर्शवादी एवं यथार्थवादी या अन्य परिचित मूल्यों को सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह लग चुके हैं। स्पष्ट है कि मूल्यों को इस संक्रमणकालीन स्थिति में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के उदात्त मूल्यों से फिर जुड़ने एवं विकासमान संस्कृति की उभरती नई चुनौतियों का सामना करने के अलावा हमारी दृष्टि में किसी नए विकल्प या दिशा का संकेत नहीं उभरता।

वस्तुतः समस्त स्थापित विचारधाराएँ आधुनिक तकनीकी विकास और उसकी विवेक शून्य जड़ता के दबाव से टूट रही हैं। उनकी निगरानी में मनुष्य जाति की आस्थाओं, आशाओं और आकांक्षाओं को भाषा देने एवं परिभाषित करने के सिलसिले में श्रेणीबद्ध संस्कारशीलता और अनुशासन प्रियता एक नैतिक अंधेपन और चारित्रिक संकट से आक्रान्त है। शासनतंत्र दफ्तरशाही और प्रशासनिक अक्षमता एवं अनुशासनहीनता के कारण राष्ट्र विरोधी गतिविधियों में सक्रिय भ्रष्ट नौकरशाहों की गिरफ्त में है। अब राजनीतिक शोभायात्राओं, जुलूसों और जलसों में शामिल होने के अलावा आज के तथाकथित प्रतिपक्ष की सही छवि नहीं उभर पा रही है। बनावटी नाराज़गी के साथ भीड़ जुटाने की राजनीतिक कलाबाजियाँ और चुनाव प्रहसन के प्रसंग व्यर्थ होते दीख रहे हैं। अपने-अपने राजनीतिक सरोकार की भूमिका में एक पूरी भीड़ हवा में मुट्ठियाँ घँमाते रहने की क्रान्तिकारी मुद्रा और नाटकीय आक्रोश के साथ भीतर चुप है।

दूसरी ओर घातक हथियारों से लैस मानवद्रोही शक्तियाँ विश्व-शान्ति के नाम पर आणविक युद्ध की तैयारियों में व्यस्त हैं। निरस्त्रीकरण के किसी कारगर

पहलू के उभरने तक उसे अमल में लाने की पहल भी बेकार साबित हो रही है। परिणामतः युद्ध सामग्री के क्रय-विक्रय का बाज़ार गर्म रखते हुए सौदेबाज़ी और अन्तरराष्ट्रीय धनियापन की भूमिका में एक ठंडी लड़ाई लगातार चल रही है। विस्फोट कभी भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य-जाति की समग्र सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक उपलब्धियों को ध्वस्त करने का अर्थ यदि उसकी आत्महत्या की स्थिति लाने की ओर उभरता है तो हम ऐसे उन तमाम राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय संगठनों अथवा सुसंगठित फ़ौजी ताक़तों को ही अपराधी मानते हैं जो वैज्ञानिकों तथा प्रविधि विशेषज्ञों की कल्पना-शक्ति एवं चिन्तनका शोषण करते हुए उनका इस्तेमाल मानवता के खिलाफ़ करने पर उतारू हैं और आणविक ऊर्जा का दोहन विनाशकारी होड़ के पक्ष में कर रहे हैं। इतना ही नहीं बल्कि मानवतावादी प्रबुद्ध चिन्तकों एवं विज्ञान-द्रष्टा बुद्धिजीवियों की चेतावनी के बावजूद वे विश्वव्यापी सामूहिक मृत्यु के ख़तरे को जारी रखना चाहते हैं। इसके समानान्तर ही बहुराष्ट्रीय व्यापारिक निगम या प्रतिष्ठान अपनी औद्योगिक शोषण-नीति की बुनियाद मज़बूत करते हुए आर्थिक विकास के नाम पर नए सांस्कृतिक उपनिवेशों की स्थापना और नवसामंती अपसंस्कृति के प्रचार-प्रसार का जाल बुन रहे हैं और सामान्य जन के विरुद्ध एक ख़तरनाक साज़िश का हिस्सा बनने की भूमिका में निरन्तर सक्रिय है।

इस प्रकार मानवीय मूल्यों की स्थापना में अन्तर्दृष्टि एवं समन्वयशीलता के अभाव के कारण तमाम राजनीतिक विचार-मंच बुरी तरह ढह रहे हैं। राष्ट्रीय चेतना एवं चरित्र के चिटखे आईने में उभरे व्यक्ति-बिम्ब एवं सामाजिक मूल्य टूट चुके हैं। व्यक्ति-मानस और जन-मानस में इतना वैषम्य और बिखराव है कि नये मूल्यों की प्रतिष्ठा के आग्रह तथा संकल्प के प्रति किसी ठोस वैचारिक प्रतिसंवाद या बहस की गुंजाइश नहीं। रचनात्मक दृष्टि से कोई सार्थक बौद्धिक प्रयाग अमल में लाया जाए—उसके लिए सही ज़मीन तैयार करने का संकेत भी नहीं है। यथास्थिति तथा मशीनी दिनचर्या की निरन्तरता हमारी नियति की एक और त्रासद विडम्बना है। बहरहाल एक सामूहिक चीख के बावजूद हम हर क़दम पर असुरक्षित हैं। निश्चित रूप से हम मानसिक स्तर पर दहशत की सलीब ढोने और उस पर टँगे रहने

की अवश्य सज़ा भुगत रहे हैं। लोक-विध्वंसी युयुत्सु हमारे ही दिशा निर्देशन में हमें ही लील जाना चाहते हैं।

ऐसी स्थिति में स्वस्थ साहित्य बोध एवं उदार मानव मूल्यबोध के बिना जनानुकूल समाज रचना के अधूरेपन और शान्ति-स्थापना के सार्वभौम बेसुरेपन को हम कब तक झेलते रहेंगे—जबकि नीली, लाल, पीली छतरियाँ हमारी सुरक्षा की होड़ में अन्तरिक्षीय प्रयोगशालाओं में बेचैन और प्रतीक्षारत हैं। और हम मृत्यु-किरणों से रची-बुनी आग की बारिश में भीगने की त्रासदी के समारम्भ और समापन पर्व का चुपचाप मुँह बाए इन्तज़ार कर रहे हैं। अंजाम जो भी हो; किन्तु इतना तो जाहिर हो चुका है कि निहित स्वार्थों की रक्षा के लिए विकसित एवं विकासशील देशों में जन विरोधी रवैये के साथ आतंकवादी कार्यवाईयाँ तेज़ होती जा रही हैं। घर-बाहर सर्वत्र बारूद के धुएँ और अमानुषिकता की हद तक पसरी वैचारिक धुन्ध में सहज मनुष्य की पहचान बेहद् धुँधली पड़ गई है।

वर्तमान स्थिति की गहराई में उतरने पर हम देखते हैं कि पर्यावरण प्रदूषण से लेकर सांस्कृतिक प्रदूषण तक की गम्भीर समस्याएँ संक्रामक और भयावह होती जा रही हैं। उनके समान्तर समाधान के तौर-पर प्रस्तावित उपचार-साधन उपस्थित संकट से उबारने की अपेक्षा ज्यादा खतरनाक साबित हो रहे हैं। इन परिस्थितियों में मज़दूर, महाजन, महायोद्धा एवं मनीषी की भूमिका में एक साथ सक्रिय एवं सचेत मनुष्य की ऐतिहासिक विवशता और विडम्बना का भले ही कहीं अन्त या हल न मिले; किन्तु विवेकशील एवं सभ्य-सुसंस्कृत मनुष्य होने के नाते हम अपनी पूरी जानकारी तथा समझदारी की रोशनी में इतना तो जानते ही हैं कि हमारी चिन्तन-प्रक्रिया एवं रचनात्मकता के प्रस्थान बिन्दु के रूप में मनुष्य ही चरम एवं परम लक्ष्य रहा है। तब तो यह निश्चित है कि वह मनुष्य हमारे अवचेतन में कहीं न कहीं अवश्य मौजूद रहा होगा और अब भी होना चाहिए; क्योंकि व्यक्ति के रूप में वह निस्सन्देह अपनी संस्कृति, परम्परा, जीवन-दर्शन, राष्ट्रीयता एवं चरित्र-चर्या के साथ इतिहास-चेतना में अब तक मौजूद है। आखिर हमारे भीतर का वह अपरिभाषित, अज्ञात और संवेदनशील मनुष्य कहाँ है? आज उसकी खोज-खबर पहले की अपेक्षा अत्यधिक प्रासंगिक और प्रयोजनीय है।

मानव-धर्म एवं मानव विज्ञान के आलोक में हम जिस भेद-मुक्त अथवा वर्ग एवं वर्ण से परे भाईचारे के मूल्य-बोध से जुड़े मनुष्य को अब तक पहचानने के दावे या फ़तवे का एलान करते आ रहे हैं। क्या वह आज के मनुष्य के भीतर कहीं भी नहीं है? अगर है तो फिर उसकी खोज की वैचारिक लड़ाई में शामिल होना ही मानवता बोध के पक्ष में प्रबुद्ध मानसिकता की मुख्य शर्त होनी चाहिए। यह हमारी मान्यता है और समय के मिज़ाज का तक़ाज़ा भी है। इसी उदात्त एवं उदार विचार-भूमि पर हमने अतीत में बार-बार सांस्कृतिक नव जागरण के क्षणों में शाश्वत भारत, नव्य भारत और प्रबुद्ध भारत की भाव-मूर्त्ति को गढ़ा है, तराशा है। राष्ट्रीय एकता तथा स्वदेश बोध की पवित्रता को सुरक्षित रखने के लिए ही फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते मृत्यु को गले लगाया है। अस्तु, आज हमें सांस्कृतिक दृष्टि के इस उन्मेष की पकड़ एवं पहचान के भीतर से गुज़रते हुए गुमशुदा आदमी की तलाश के पक्ष में बौद्धिक जागरूकता एवं सक्रियता के साथ खड़ा होना है; सामाजिक प्रयोजनों की पृष्ठभूमि में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए लड़ना है। जब कि यह तय है कि उसकी मौजूदगी के एहसास को हम भारतीय मानस पर तब तक नहीं उभार पायेंगे जब तक हम अपने भौतिक सुविधा-सम्पन्न वस्तुनिष्ठ जीवन की यांत्रिकता से जुड़ी वैयक्तिक चेतना और व्यक्तिगत स्वार्थ का कवच उतार नहीं फेंकते और आत्म-संयम की भूमिका में वर्तमान यंत्रवादी जीवन-दर्शन की दर्प मुद्रा को तोड़ने या रूपान्तरित करने की दिशा में अग्रसर नहीं होते।

आज हमें यह मानकर आगे बढ़ना है कि मनुष्यता के अभाव में मनुष्य के अस्तित्व और आन्तर व्यक्तित्व की जाँच-पड़ताल मरे चुके क्षणों और घटना-क्रमों की बुनियाद पर नहीं की जा सकती। हम अपनी परम्परा, राष्ट्रीयता एवं संस्कृति को एक गतिशील विचार-प्रवाह के रूप में स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से सांस्कृतिक तथा सामाजिक स्तर पर उभरती चुनौतियों एवं नये परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में ही उनकी मूल्यगत जीवन्तता के हम पक्षधर हैं। और किसी हद तक अतीत के उदार जीवन मूल्यों को विकसित करना और जीवन में उतारना मानवीय प्रगति के पक्ष में ज़रूरी समझते हैं। लेकिन अतीत जीवी बनकर विकास विरोधी अथवा प्रतिक्रियात्मक स्थितियाँ लाने के ग़लत क़दम का विरोध करते हुए शोषणमुक्त मानव-समाज की स्थापना में सक्रिय

संगठनों के रचनात्मक स्वर को बल देने की दिशा में हमारी वैचारिक लड़ाई जारी रहेगी।

समय और इतिहास के बदलते तेवर के साथ आज हमें अपने सोचने के ढंग में बदलाव लाने के लिए एक स्वच्छ रचनात्मक परिवेश रचने के संकल्प को दोहराना है। इसे हम एक लेखकीय समाह्वान एवं अभियान के रूप में ही देश-निर्माण एवं चरित्र-निर्माण के क्षेत्र में रचना-धर्म की एक अनिवार्य शर्त मानते हैं, जिसे रूपायित करने के लिए नव प्रगतिशील-चेतना की उस कर्त्तव्यनिष्ठ मानसिकता, सामाजिक सजगता, सांस्कृतिक सहृदयता तथा सहयोग की अपेक्षा है, जो देश के आगामी सामाजिक ढाँचे और आर्थिक विकास के नये आधार को खड़ा करने में हमारी ऊर्जा के मुख्य स्रोत की भूमिका का निर्वाह करेंगे। इसलिए अब ज़रूरी है कि राष्ट्रीय स्वायत्तता, समग्रता एवं जातीय संहति की रक्षा के लिए अन्तर्विरोधों और वैचारिक विरोधाभासों के बावजूद भारतीय अस्मिता को एकजुट होकर आत्म चिन्तन के आलोक में उजागर करें। चेतना और चिन्तन को नया आयाम दें। इन्हीं आग्रहों के तहत हम जिस गहरी संवेदना एवं अलग-अलग भाषा-संस्कारों के साथ मातृचेतना की रोशनी में अपनी मिट्टी को प्यार करते हैं, उसी तीव्रता के साथ मुक्तमन एवं मुक्त चिन्तन के धरातल पर मानवता और अन्तरराष्ट्रीय अंर्तचेतना को भी प्यार करते हैं। इसी सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्वरता की तलाश में हमारा यह नवाग्रह एक नये साहित्यिक आह्वान एवं समवेत अभियान की सक्रिय रचना-यात्रा है।

मनमोहन ठाकौर
कृष्ण बिहारी मिश्र

छविनाथ मिश्र	शंकर माहेश्वरी
नीलम श्रीवास्तव	ध्रुवदेव मिश्र पाषाण
प्रभा खेतान	सुशील गुप्त

नवल

९ मई १९८८

छविनाथ मिश्र

अनार-गाछ : रोशनी के अक्षर



मेरे आँगन में एक अनार का गाछ है—
रचना के लटकते क्षणों के भीतर से गुज़रता है
उगते सूरज के रंग में नहाकर फूल-फूल हो जाता है
और तब टहनियों पर लिखी जा चुकी होती है
पंखुड़ियों के खुल जाने तक की अन्तर्यात्रा ।

सुबह जब भी मैं उसके निकट होता हूँ
पत्तों पर उभरने लगती है—
ऋतुरंग के स्पन्दनों में उसके होते रहने की कविता
न जाने कब छू जाती है कोई अनाहत किरण
रविशंकर के सितार की तरह बजने लगता है
अनार-गाछ

अनायास ही निगाहें उठ जाती हैं आकाश की ओर—
धुएँ की सफ़ेद लहरदार लकीरें खींचता हुआ
अभी-अभी कोई बाज़नुमा विमान उड़ते-उड़ते
नीलेपन के अतल विवर में खो गया
मेरी दृष्टि में तैर गया—
अनार के दहकते फूलों जैसी आग का
विस्तार, हवा के रुख का पागलपन
सर्वनाशी हाहाकार
और मेरे दिमाग़ में टूट चुके होते हैं सितार के तार-तार

बारूद की भाषा में लिखे प्रशस्ति-पत्र ओढ़े
पुरस्कारों की गरिमा से दबे-झुके ऊँचे लोग
घर की ओर लौट रहे होते हैं
दो कदम चलते ही ज़मीन से चिपक कर
खड़े-खड़े बुत बन गए होते हैं

दूर दूर तक तैरती है चीख़ दर चीख़—
अचानक भीतर से कुछ फूटा—
ओ मा !
मेरे आँगन में तो कहीं नहीं है
कोई नागासाकी न हिरोशिमा
और अनारगाछ पहने की तरह बज रहा होता है

मैं एकटक अनार की सुफला टहनियों को देखता हूँ
हरे-हरे, नन्हें नन्हें पत्तों पर रोशनी के अक्षर किलकते हैं
मिट्टी की खुशबू जैसी कोई कविता गमकती है
कविता की रोशनी में पूरा आँगन हरा हो जाता है
मेरी चेतना की गहराई में एक जाना-पहचाना स्वर उतरता है—
'मेरे आँगन में एक अनार का गाछ है'—
जो रचना के लहकते क्षणों के भीतर से गुज़रता है
उगते सूरज के रंग में नहाकर
फूल-फूल हो जाता है । ●

मैं और चीज़ें



कभी-कभी
लगता है चीज़ें हैं
और नहीं भी हैं

मैं उन्हें कोई नाम
या अर्थ देना चाहता हूँ

अनगिनत प्रकाश वर्षों की दूरी तक
उनके होने के अहसास
और अपनी तलाश को जारी रखना चाहता हूँ
यानी
मैं कभी शून्य में लटका हुआ होता हूँ
कभी शून्य से परे
कई-कई शून्यों में भटक जाता हूँ

शून्य और अशून्य के दरम्यान
जब सचमुच
मैं कहीं होता हूँ
तब चीज़ों के अर्थ खुलने लगते हैं
कुछ अजनबी बिन्दु
और नाम
मुँहबन्द गुलाबों की तरह खिलने लगते हैं
खुशबू के परमाणु
पूरे आकाश में तैरने लगते हैं
सोच के सिलसिले बनने लगते हैं

मैं टूटते-टूटते
सहज हो जाता हूँ
चीज़ें अपनी बारीक बनावटों की हद तक
पारदर्शी हो जाती हैं
और तब
कविता में खुलते हुए
मेरे होने के तमाम अर्थ
बेहद अच्छे लगते हैं ।

रोशनी : अपनेपन का अहसास

●

कुछ लोग
अँधेरे में साज़िश दर साज़िश
बुनते हैं
कुछ लोग
एक क्रान्ति से दूसरी क्रान्ति का
रास्ता चुनते हैं
और
बीच के लोग
कहते हैं—
अँधेरा चाहे जितना भी सुखद हो
न जाने क्यों, रास नहीं आता
अँधेरे में
आदमी की शिनाख्त मुश्किल है
यह रोशनी के अभाव में
बेरंग है
बुज़दिल है
दरअस्ल रोशनी भूख है, प्यास है
रोशनी अपनेपन का अहसास है। ●

ध्रुवदेव मिश्र पाषाण

लिखने की मेज़ पर

●

फैला होता है कागज़
पारदर्शी हो जाती है मेज़
आकाश से झर रही होती है किरणों की लिपि
शिल्पित हो रहे होते हैं शब्द
पिघल रही होती हैं दीवारें
लहरों पर तैर रही होती है धरती
आँखों में खिल रहे होते हैं इन्द्रधनुष
मानस को मथ रहे होते हैं वक्त के सवाल
अन्तस में मचल रहे होते हैं भविष्य के संकल्प
आँधियों के खिलाफ तन रही होती हैं कोपलें
शिराओं में दौड़ रही होती है सृजन की पुलक
स्याही की हर बूँद में उफन रहा होता है सिंधु का उछाह
होठों से फूट रही होती है कविता
चल रही होती है कलम। ●

पराजय का सुख



नदी
जो मेरे पिता के पसीने से जनमी थी
कितनी वेगवान हो गई है
तुम्हारे पसीने से जुड़ कर

पहाड़
जो सूरज को पाँव नहीं धरने देता था
मेरे गाँव की धरती पर
किस कदर धूल-धूल होकर बिछ रहा है
तुम्हारी अगवानी में

किस कदर चमक रहा है
मेरे माथे का आकाश
तुम्हारी आँखों में
तुम्हारी आहट से खुल रहे हैं
क्षितिजों के कपाट

तुम्हारी साँस-साँस पर
हवाओं में गूँज रही है
नए आदमी के हौसले की कविता

तुम्हारे पाँवों की गति समय की है
तुम्हारी बाँहों का विस्तार हवाओं का है

मैं तुम्हें खूब जानता हूँ
तुम्हारे जन्म का स्रोत अलग नहीं है
मेरे जन्म के स्रोत से

फिलहाल अपराजेय हो तुम
तराशते हुए वर्तमान
तलाशते हुए भविष्य
लगातार जीत रहे हो तुम
मेरे हारे हुए मन से लड़कर
भाई! कितना बड़ा हो गया हूँ मैं
तुम से हारकर! ●

●

मैं तरस रहा हूँ
किसी दिन
हत्या की खबर से खाली अखबार पढ़ने को
सत्ता के स्तवन से खाली आकाशवाणी सुनने को
मायामृगों की उछल-कूद से खाली दूरदर्शन देखने को

मैं तरस रहा हूँ
संसद को कत्लगाह बनने से रोक पाने को
पड़ोसी के आतंक से मुक्त एक पूरी नींद सो पाने को
आँसू और खून से सराबोर सैंतालिस की अधूरी कविता पूरी कर पाने को

मैं समझता हूँ
कम से कम तरस के मामले में
मैं अकेला नहीं हूँ
क्या आप भी ऐसा समझते हैं ?

क्या आप भी
न्याय के ताप से कानून की हथकड़ियों को पिघलाना चाहते हैं ?
आह के दावानल से
आस-पास फैलते जंगल को जलाना चाहते हैं ?
खून की तिजारत के खिलाफ़
आदमी के रक्त में उबाल लाना चाहते हैं ?

क्या आप भी तमाम इबादतगाहों को
घिघियाहटों की जगह
मुक्ति की किलकारियों से भरना चाहते हैं ?
वासंती बादलों से स्वर मिलाकर
आणविक छतरी की क़ैद से आज़ाद
अमन का राग गाना चाहते हैं ?

क्या आप भी
देवों के प्रिय आर्यावर्त में
आदमी को आदमी बनाए रखने के लिए
आततायी हाथों से बन्दूकें छीनना चाहते हैं !

सच बोलिए
भाषा के ऐशगाहों के खिलाफ़
क्या सुन रहे हैं आप
पाणिग्राही और मोलाइस के रक्त की आवाज़ !

सच बोलिए
इबादतगाहों की नालियों में अब और क्या देखना चाहते हैं आप !
आदमी का खून, बच्चों की लाशें
या दूध और दूब, अक्षत और फूल !

सच बोलिए
अपने आँगन में क्या उगाना चाहते हैं आप !
तुलसी और गुलाब
या कैक्टस और बबूल !

यदि नहीं बनाना चाहते हैं आप
खेतों और फैक्टरियों को आगामी प्रलय की प्रयोगशाला
यदि नहीं फैलाना चाहते हैं आप
अपने इर्द-गिर्द गैस-चेम्बरों का जाल
तो आइए कम से कम एक दिन
न पढ़ें कोई अखबार
न सुनें आकाशवाणी
न देखें दूरदर्शन
यदि मौत के आखिरी अँधेरे से
ज़िन्दगी को बचाए रखना चाहते हैं आप
तो आइए मिल जुलकर पूरी करें
आँसू और खून से सराबोर सैंताल्लिस की अधूरी कविता। ❁

नवल

एक नदी का नाम है इच्छामती



एक नदी का नाम है इच्छामती
बहती थी जो घनघोर जंगलों में
टकराती थी पहाड़ों से
ले लेती थी ज़मीन को अपनी उद्दाम बाँहों में।
फिर बदला भूगोल
उसके किनारे बसा एक गाँव
फिर बहने लगी वह गाँव के बाशिन्दों के दिलों में।

एक नदी का नाम है इच्छामती
जो लोगों के दिलों में बहती थी
बहती थी उनकी आस-निरास में
जुड़ गयी थी जो उनके सुखों और दुखों से।

बदला वक़्त
अपने साथ बदलता गया इच्छामती को
लोगों के दिलों को
उनके ऊपर तने हुए आकाश को।

एक नदी का नाम है इच्छामती
जो बहती थी एक गाँव के किनारे

लोग नहाते थे उस में, डोंगियाँ चलाते थे उसकी छाती पर
और वह थी कि उनके खेतों की पैदावार बढ़ाती थी

गाँव बना नगर फिर रियासत और फिर
और फिर
लोगों ने उठाना शुरू किया अपना सिर
इच्छामती की लहरों के साथ

एक नदी का नाम है इच्छामती
जिसके किनारे शुरू हुआ युद्ध
उस के आँचल में खूनसना सूरज डूबा
फिर हुई भोर
बजीं प्रार्थना की घंटियाँ
कुछ लोग हारे
और जो लोग जीते
उन्होंने उसको एक नया नाम दिया

नाम बदल जाने से
क्या नदी का प्रवाह बदल जाता है ?

एक नदी का नाम है इच्छामती
जो बहती है अपने भूगोल और इतिहास के साथ
जिस की लहरों में छिपी हैं अनगिन कहानियाँ ।

एक नदी का नाम है इच्छामती
जब ट्रेन उसके ऊपर के पुल से गुज़र जाया करती है
ले जाती है मेरी तरह कई मुसाफ़िरों को
किसी को ऊँघाती किसी को जगाती
वह चुपचाप बहती चली जाती है

एक नदी का नाम है इच्छामती
जो बहती है मेरे सरीखे कई-कई लोगों की धमनियों में

इच्छामती क्या सिर्फ़ एक नदी का नाम है ! ●

क्रौंच-वध



किसके भीतर नहीं करते प्रेमालाप क्रौंच-युगल
कौन नहीं होता आहत
नही करता आर्त्तनाद
प्रिय स्वप्न की हत्या देख कर !

एक क्रौंच मरता है
एक करता है विलाप
बन जाता है वाल्मीकि ।

काव्य-कथा का अजस्र प्रवाह
गढ़ता है मानुष के भीतर असंख्य कवि
अपार सम्भावना लिए
वेदना
हो जाती है मुक्तिकामी ।

वसन्त अगर सिर्फ़ एक मौसम होता



वसन्त अगर सिर्फ़ एक मौसम होता
तो मैं भी गाता नये पत्तों के साथ
नाचता फूलों की ताल पर

और जब बीतता मौसम
मैं भी बीत जाता उसके साथ

वसन्त अगर सिर्फ़ खुशियों का नाम होता
तो मैं भी गाता उमंग में
नाचता चाहों की ताल पर
और जब होता मन के प्रतिकूल
मैं भी ग़र्क़ हो जाता अँधेरे में

वसन्त अगर सिर्फ़ एक शब्द होता
तो मैं भी उछालता उसको जहाँ-तहाँ
उसके रंगों में नहाता, गाता
और जब खो जाता उसका अर्थ
मैं भी खत्म हो जाता उसके साथ

लेकिन ऐसा तो नहीं है न वसन्त
वह जन्मा मेरे जन्म से पहले
गढ़ा उसने आदम और हव्वा को
रचा उसने उनके भीतर धधकती हुई आग को

आदमी की आग जब-जब रचती है अपने भीतर, अपने बाहर
तब वसन्त होता है
आदमी की आग जब जब फूँकती है शंख
तब वसन्त होता है
आदमी की आग जब-जब उठाती है न्याय की तलवार
तब वसन्त होता है

आदमी की अनंत संभावनाओं का
नाम है वसन्त

वसन्त सिर्फ़ एक मौसम का नाम ही तो नहीं है

नीलम श्रीवास्तव

मेरी आँखें



पेड़ों की पत्तियाँ हिलती हैं
रात हो या दिन—अपने समय पर
फूल खिलते हैं
हवा क्या कह जाती है उनके कानों में ?

हवा क्या कहती है चिड़ियों के
कानों में, आँखों में, पंखों में ?
जब कहीं तड़कती आवाज़ में
बन्दूक़ से गोली छूटती है
और चिड़ियाँ एक दूसरे को
सावधान करती हुई
आकाश हो जाती हैं।

मेरे होठों पर आकाश से
शब्द उतरते हैं और
फैलते हैं कभी बाँसुरी के रंग पंखों जैसे
कभी बजते हैं बिगुल और शंखों जैसे
और लगता है मेरे ऊपर
जमी हुई बर्फ़ पिघल रही है।

मेरी आँखें पेड़ों की हिलती पत्तियाँ हैं
मेरी आंखें खिलते हुए फूल और
भटकती हुई चिड़ियाँ हैं
मेरी आंखें फूल और चिड़ियों के
खिलाफ़ बन्दूक उठाने वालों को
पहचान रह हैं। ●

नालन्दा के खंडहर देख कर



नालन्दा ! एक यशस्वी नाम !
शताधिक आचार्यों की
कृति-किरणों से बना हुआ
मानवीय महिमा का एक प्रतीक !

और ये खंडहर !
जैसे बुझे सूर्य के लाखों खंड
जोड़कर रख दिये गए हों।
एक शोक-नाटिका-शैव्या
फटे आँचल में मृत शिशु को उठाये हुए खड़ी है।

मेधा अपनी रक्षा अपने आप नहीं कर सकी।
राज शक्ति टूटी और टूटती चली गई
मौर्य-गुप्त-वर्धन के शस्त्रों को जंग खा गया
चाणक्य का अर्थशास्त्र अनपढ़ा पड़ा रहा
और मगध की विशाल, विश्वख्यात धरती को
एक बर्बर फ़ौज ने रौंद डाला
नालन्दा के कीर्तिजयी चैत्य और विहार
जौहर में जली हुई नारियों के अस्थि पंजर
जैसे बिखर गए।

सदियाँ गुज़र गईं।
सारनाथ पुजता रहा, बुद्ध गया पुजता रहा
पावापुरी में परिव्राजक मेले लगाते रहे
प्रियदर्शी अशोक के शिलालेख पढ़े जाते रहे
लेकिन आष्टांगिक धर्म अतिवाद में समा गया
समता पर गोलियाँ चलाई सामन्तवाद ने
मगधदेश जाति के घरौंदों में बँट गया।

सभ्यताएँ, संस्कृतियाँ ऐसी भी मरती हैं क्या? ●

आवाज़



सारे शहर के लोग कहते हैं
उन्हें एक आवाज़ सुनाई पड़ती है—
किसी पुल के टूटने की आवाज़ से
ज़्यादा खौफ़नाक
एक चुसी हुई हड्डी पर लहू-लुहान गुर्राहट से
ज़्यादा वीभत्स
अचानक ट्रेनों के लड़ जाने के धमाके से
ज़्यादा दहशत भरी,
उन्हें हर समय एक आवाज़ सुनाई पड़ती है।

लोग भागते हैं
बाज़ारों में पैठते हैं
ऑफ़िसों-कारखानों में खोजते हैं पनाह
भीड़ों में भेस बदलते हैं
फिर दौड़-दौड़ कर गाड़ियाँ पकड़ते हैं

लेकिन घर के दरवाज़े से दूर
अपनी जेबों की जिरहबन्दी में
पस्त, खड़े रह जाते हैं…

माताएँ एक ही सन्दूक को बार-बार
खोलती, बन्द करती हैं
बच्चों को मामूली ज़िद्दपर पीट देती हैं
फिर उन्हें गोद में खींचकर
रोने लगती हैं…

आजकल अखबार से ज्यादा खबरें
हर घर में तैयार हो रही हैं—
कि बड़े-बूढ़े नाती-पोतों को दुलारते हुए
भगवान से अपनी मौत की दुआ माँगते हैं,
कि घर में जितने सदस्य हैं : उतने ही मंच हैं,
कि रिश्तेदार भाषा की:शतरंज खेलना सीख रहे हैं,

कि कुनबे वालों ने कुनबे वालों को ही
अवैध सन्तान घोषित कर दिया है,
सबसे बुरी खबर यह कि जवान बेटा
बहिन की साड़ी चुराकर
शहर की बदनाम गली की ओर
भाग गया है…

लोग झंडों-नारों-जुलूसों को देखते हैं
तरह-तरह के कोल्हुओं में जुते हुए
मृग-जल सी चमकती तेल की धार में
अपना भविष्य पढ़ते हैं
और आवाज़ें सुनकर चौंकते-ठिठुर जाते हैं—
जैसे कोई साँप फुफकार रहा हो,
जैसे टिड्डियों का दल
आकाश से गुज़र रहा हो,
जैसे कोई क्रुद्ध भैंसा खुरों से
ज़मीन खूँद रहा हो… *

चेहरे की भाषा



यों तो हर रोज़ सूरज निकलता है
सूर्यास्त होता है
लेकिन अलग है समय की वह पहचान
जो चेहरों पर सूर्यमुखी वन्दना या
सूखे पत्तों का विलाप रच जाती है

इसलिये जब कभी मौसम का हाल जानना हो
तो न आकाश को निहारो
न दिशाओं से जिरह करो
उस आदमी के चेहरे को देखो
जो धूप और मिट्टी के बहुत क़रीब हैं।

वह चेहरा ही सबसे ज्यादा सही है
वही हर मौसम की निजी डायरी रोज़नामचा-बही है।
वहाँ लिखा हुआ मिल जायेगा—
पानी और प्यास का हिसाब
फ़सलों का भूख से रिश्ता
कपड़ों से देह की दूरी
मकानों और नंगी धरती का संवाद…

जो भी लिखा है—वह शब्दहीन हो सकता है
फिर भी वही सार्वजनिक भाषा है
जिसमें न कोई चातुरी है, न कोई अभिनय है
वह हर अंधेरे-उजाले का निष्कपट परिचय है।

इसलिये जब कभी युग-संवत्सर
सूरज या अमावस की बात करो
पहले आदमी के चेहरे को पढ़ो
जो धूप और मिट्टी के बहुत क़रीब है
उसे समझने के लिए तुम्हें
ज़रा खुद को समझना होगा। ❁

डॉ० प्रभा खेतान

मैंने चिड़िया से कहा



मैंने चिड़िया से कहा
कैसे सुरक्षित रख पाती हो तुम इतने विस्तृत आकाश में
अपने सुनहले डैने !
क्या नहीं झपटता तुम पर
बादलों को चीरता हुआ कोई बाज !
आखिर क्यों राख नहीं कर डालती तुमको सूरज की आग !
कैसे बच पाती हो तुम
सब कुछ को पानी-पानी करते बादलों के गुस्से से !"

चिड़िया ने कहा
"अगर साध कर अपना मन डैनों की तरह
तुम भी दोस्त बना लो हवाओं को
खोल कर रख देंगी वे आकाश की सत्ता का रहस्य
पूरा का पूरा अन्तहीन दायरा लगने लगेगा अपने ही आँगन का विस्तार

महसूस करने लगोगी तुम उनकी बाँहों में नई ताक़त का प्यार
सूरज की आँच से पा सकोगी
रोशनी की ताज़ा पूर्णता"

मैं देखती रही
चिड़िया उड़ चली फिर ज्योति की दिशा में
लगा
नए सिरे से मैं खुद अब चल पड़ूँगी
अनन्त के पथ पर *

पापा



पापा
तुम्ही ने दी थी चप्पलें
जिन्हें पहन
मैं चलती-मचलती रही इतने साल

रंगीन
खूबसूरत
लुभावनी चप्पलों में
लगे हुए थे
चिड़िया के उड़ान-पंख

मगन-मन उन्हें पहन कर मैं
फुदकती हुई धरती की गोद में
नापती रही सारा आकाश

देखो न पापा
अब टूट गई हैं वे चप्पलें
और अब पहनना चाहती हूँ मैं
ऊँची एड़ी के जूते
आखिर क्यों घूरने लगी हैं पापा
तुम्हारी त्योरियाँ
अबकी बार मेरे क़दमों को ! ●

बीतते हैं दिन



बीतते हैं मास
बीतते हैं साल
सड़क-दर-सडक
कदम-दर-कदम
लगातार चलते हैं पाँव

चढ़ते हुए सीढ़ियाँ
उतरते हुए सीढ़ियाँ
तलाशते हैं घर
छोड़ते हैं घर
विराम-दर-विराम
लगातार बढ़ते हैं पाँव

क़दम-दर-क़दम
निरंतर गतिमान
ढूढ़ते हैं राह
गढ़ लेते इतिहास
पहनते हैं चिड़ियों की उड़ान

तोड़ते हुए नींद
देते हैं सूरज का साथ
लगातार चलते हैं पाँव *

तपती नंगी सड़क



क्या तुमने
तपती नंगी सड़क पर
बारिश को चलते देखा है !

जब भीगा हुआ धुआँ बनती है
उसके तलुओं से टकराती आग
तब कुछ और होता है सड़क का नाम

जीवित धड़कती साँस छोड़ती
सड़क
तब होती है एक प्रेमिका *

क्या होगा



बचा ली गई स्मृतियों को सहला कर
बीते दिनों को दुहरा कर !

एक जहरीला दंश है
जो एसिड की तरह झरता है आकाश से
धरती की बेटी मैं
सहती रहती हूँ डूबते सूरज का अत्याचार
दहक रहा है एक एक अणु
मेरे अस्तित्व का

जब जलने लगती है
जड़ों की आखिरी पहुँच
मैं चीखती-तड़पती हूँ उस आखिरी पत्ते के लिए
जिस को मान कर आखिरी तुरुप
पूरी बाज़ी में दबा रखी थी घुटनों के नीचे
पाल रही थी एक तयशुदा समझ के सहारे
आखिरी बाज़ी को जीत लेने का भ्रम

सोचती हूँ पता नहीं क्यों
खराब करते हैं स्वप्न मेरी नींद ।
भीतर से फूटती रुलाई
खोजती हुई प्यार का एक परस
पिघलती जा रही है मेरे खून में
डरती हूँ अपने भीतर पनाह लेती
एक अँधेरी चीज़ से

मगर कहीं यही तो नहीं है वह चीज़
जो बनाती जा रही है
मुझको ठोस से ठोसतर !

शंकर माहेश्वरी

किरण



कोई चिड़िया
आकाश में एक लकीर खींचती है
तो मेरा मन कैसा हो जाता है
कि लकीर तो उधर
मुझे तो सिर्फ़
छटपटाहट के पंख मिलते हैं

एक लकीर के लिए
गर्भ जैसी वेदना झेलकर
बार-बार आता हूँ
और हर बार
अपना खालीपन लेकर
लौट जाता हूँ

ओ किरण,
यदि तू न होती
तो न तो वह लकीर दिखती
और न मेरी छटपटाहट। *

शब्द चले जाते हैं



तुम कुछ भी कहते हो
तो मैं अनसुनी कर देता हूँ
लेकिन जब भी वक्त पड़ता है
मुझे तुम्हारी ही बात याद आती है

तुम्हारे कहने और वक्त के आने के बीच
जो अन्तराल है
उसी खोखले को
समर्पित है मेरा जीवन

वक्त जब पछतावा लेकर आता है
तो मैं गाँव-गाँव, नगर-नगर
नदी, पहाड़, समुद्र और रेगिस्तान
जंगल-जंगल खोजता फिरता हूँ तुम्हारे शब्द
लेकिन वे प्रकाश पथ पर भागते हुए
मेरी पहुँच से परे
पता नहीं कितनी दूर चले जाते है। ✿

कविता का सन्दर्भ

●

चाय की मेज़ों में एक का नुकीलापन
कविता के अनिवार्य सन्दर्भ सा जुड़ गया
जिसके बिना संभव नही था
किसी भी अर्थ का खुलना—

सरपट अँधेरे पर एक किरण रेंग गई
हरिण की छलाँगों ने आकाश को घेर लिया
भटके पँखेरू का सरोवर पर उतर आना
चोंच से पानी का सारा स्वाद पी जाना
फ़ूल पर रंग की आग
और खेत में हवा की छुअन,
संदर्भ
सचमुच कैसा लगता है
कविता का खुल जाना। *

बिजलियाँ गुँथी रहें



तुम्हारा दिन और मेरी रात
या मेरा दिन, तुम्हारी रात
एक ही समय।

यह सूरज है
जो अपनी किरणों से विश्लेषण करता है
तुम्हारा और मेरा स्वप्न
एक साथ जगता है
यह नदी है
जो दो किनारों को जोड़ती है।

आओ
हम सूरज का ताप
और नदी का वेग
दोनों सहें
और बादलों में बिजलियाँ गुँथी रहें।

सूर्यव्रती

वसुन्धरा माता के स्नेह साकार,
तुम्हें खेतों में जाकर हम
न्योता दें बार-बार
शस्य, हमें स्वास्थ्य दो
कि ठण्ड और गरमी का
आस्वादन कर सकें।

जब-जब तुम आओ
हम उत्सव मनाते रहें सपरिवार
रच-रच कर गीत नये
स्वागत में गाते रहें।

आता है जब प्रकाश
सब कुछ होता उजास
वैसे है सूर्यवती,
आओ तुम गेह में हमारे।

सुशीला गुप्ता

ज़िन्दगी जीने के लिए

●

कभी-कभी समझौते ज़रूरी हैं ;
बचपन में थमाए गए इस सूत्र को,
मैंने 'हुंह:' करके झटक दिया ।

आखिर यह मेरा अपना मामला था,
नितान्त व्यक्तिगत और निजी—
इस बारे में किसी भी फ़ैसले का हक़
सिर्फ़ मुझे था !

लेकिन कमबख्त वक़्त,
तेज़तर क़दमों से चलता हुआ,
मेरे विद्रोह को
पर्त-दर-पर्त तोड़ता रहा,
मेरे हर सच को
सैकड़ों झूठ से जोड़ता रहा ।

दरअसल दुनिया के निज़ाम में
आदमी का आदमी होना भी
कितना ज़बर्दस्त हादसा है,
और ईमानदारी संगीन जुर्म !
सम्बन्धों की टूटी नाव भी,
हमें कहीं नहीं ले जाती ।

अनगिनत घुमावदार गलियारों में भटकते हुए
हम उसी दहलीज पर
सिर झुकाने को विवश हैं,
जिसकी नींव समझौते पर टिकी हुई है ।

बुतों का शहर...

●

क्या फ़र्माया आपने ?
आप बुतों के सौदागर हैं ?
तो आप बिल्कुल सही ठिकाने पर पहुँचे हैं, हुज़ूर
तनहाइयों का यह शहर।

जी-हाँ, हुज़ूर
निहायत अजीबोग़रीब है यह शहर,
निहायत अजीबोग़रीब हैं यहाँ के बुततराश
इनके खजाने में हैं,
ऐसे अजीब-अजीब बुत,
जो हज़ारों फ़न के ज़िन्दा फ़नकार हैं
जादुई तिलिस्म के अनोखे शाहकार हैं।

देखिए न, हुज़ूर
आपके मुबारक कदमों की आहट पाकर
इन्होंने अख्तियार कर लिए,
अनोखे रंग-रूप
मज़ाल है, हुज़ूर, आप इनमें से,
किसी को भी नापसन्द कर दें ?

दौलतमन्द रईसों की पसन्द इन्हें मालूम है
आपकी ज़रूरत से भी ये वाकिफ़ हैं
आपको चाहिए—खूबसूरत चेहरे
वक्त-ज़रूरत के मुताबिक,
जो करते रहें आपकी दिलबस्तगी,
बने रहें ऐश के सामान,
आपके फ़र्माबरदार, वफ़ादार, होशियार गुलाम।

हाँ, जो कभी न भूलें अपनी हैसियत
हमेशा याद रखें अपनी औकात,
जो हर वक्त हों तैयार,
आपकी उँगलियों के इशारे पर,
नाचें, हँसे, रोएँ, गाएँ
और हाँ, प्यार भी करें!

लेकिन बदले में,
अपने लिए हरगिज़ न चाहें नामाकूल आज़ादी,
क्योंकि आज़ादी से आपको सख्त नफ़रत है
हाँ, अगर आप खुश हो जाएँ
तो आज़ादी नहीं, ईनाम देते हैं
अपने ईनाम-अकराम के दम पर ही
आपने खरीदी है
औरों के जीने की आज़ादी!

वैसे आपके शाही क़ैदखाने में
हर तरह का आराम है—
सजे-सजाए कमरे
क़ीमती गलीचे
बर्फ़ को गर्माहट
और धूप को ठंडक देनेवाली जादुई मशीनें!

जहां वक्त, हाथ बाँधे, गुलामों की तरह,

आपकी तारीफ़ में,
गीत गाता है, बीन बजाता है ;
वहाँ हर बुत के लिए,
हँसने-गाने-रोने और जीने की खुली सुविधा है,
सिर्फ़ ज़ुबान पर पाबन्दी है ;
हक़ माँगनेवाले कमज़र्फ़ हाथ काट लिए जाते हैं ।

हाँ, तो मैं कह रहा था
ये तमाम बुत,
आपके क़ीमती अजायब घर में,
बेहद फबेंगे, हुज़ूर !
यह रही मोम की गुड़िया,
आपकी जायज़-नाजायज़
हर माँग को पूरा करनेवाली—वफ़ादार !
ये रहे तोताचश्म गुड्डे,
आपके इशारे पर—
झुनझुना बजाएँगे, गाएँगे ;
जी-हाँ, बेभाव क़हक़हे भी लगाएँगे ।
ये रहे—काठ के सिपाही,
आपके लिए हर जंग जीत लाएँगे,
भरे बाज़ार बिगुल बजाएँगे आपकी जय-जयकार में
और ज़रूरत खत्म होते ही,
सिर झुकाए, कुत्तों की तरह
अपने खेमों में लौट जाएँगे ।

ये रही—खूबसूरत परी
आपके ऐशो-आराम के पलों में,
रेशमी फूलों के मानिन्द
रेशमी प्यार बरसाएगी,
और जब आप सो जाएँगे,
चाबी खत्म हो जानेवाली गुड़िया की तरह
फिर से बुत बन जाएगी ।

है न, अजीबोग़रीब करिश्मा, हुज़ूर !
लेकिन, आपकी नज़र,
कोने में पड़ी,
बिन तराशी गुड़िया पर क्यों ठहर गयी !
नहीं, हुज़ूर,
उसे तराशनेवाला बुतफ़रोश अभी पैदा ही नहीं हुआ।
वह तो
नामालूम बाग़ी की बेटी है,
ऊबड़खाबड़ चट्टान का टुकड़ा है ;
बेहद नुकीली है,
और, हाँ, बेलाग बोलती है ;
अँगारे उगलती है
बेअदब लड़की
अपने टुच्चे हक़ों के लिए लड़ती है ;
किसी की अय्याशी का सामान बनने से,
सरासर इन्कार करती है ;
रेगज़ारो पर चलती है ;
अपना खौफ़नाक अकेलापन खुद ही झेलती है
सुविधा के टुकड़े नामंज़ूर करती हुई
खुली तलवार-सी हरदम तनी रहती है।

अब क्या अर्ज करूं, माई-बाप !
यही एक बीहड़, जिद्दी लड़की
सन्नाटे के शहर में,
हंगामा मचाए रहती है ;
आँधियो के मुकाबले में
बेमतलब, चिराग़ जलाए रखती है !

गुस्ताखी माफ़, हुज़ूर
यही एक अनगढ़ और अक्खड़ बुत
बिकाऊ नहीं है। *